



Developmental Psychology



Psycho Social development

मानो सामाजिक विकास

Erik Erikson's



Dr. Amar Bharti Assistant Professor



PosterMaker

3.3. एरिक एरिकसन का मनो-सामाजिक विकास का सिद्धान्त (ERIK ERIKSON'S THEORY OF PSYCHO-SOCIAL DEVELOPMENT)

109

3.3.1. परिचय (Introduction)

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व के सिद्धान्तों में सबसे महत्वपूर्ण एवं सुप्रसिद्ध सिद्धान्त इरिकसन का 'मनोसामाजिक विकास' सिद्धान्त को माना जाता है। सिगमण्ड फ्रॉयड की तरह ही फ्रॉयड की तरह ही इरिकसन भी व्यक्तित्व का विकास क्रमिक अवस्थाओं में होता है और स्थान देते हैं। फ्रॉयड के मनोलैंगिक अवस्थाओं के सिद्धान्त के विपरीत इरिकसन का सिद्धान्त सम्पूर्ण जीवन पर पड़ने वाले सामाजिक अनुभवों के प्रभाव की व्याख्या करता है। इरिकसन ने अपने सिद्धान्त में मनोलैंगिक अवस्थाओं का वर्णन न करके मनोसामाजिक अवस्थाओं का वर्णन किया। इरिकसन का व्यक्तित्व सिद्धान्त फ्रॉयडवादी व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त की तुलना में अधिक व्यवस्थित एवं संगठित है। फ्रॉयड ने अपने सिद्धान्त में इंद को अधिक महत्व दिया जबकि इरिकसन ने अहं को। इरिकसन ने अपने सिद्धान्त में संस्कृति, समाज एवं अहं में होने वाले संघर्ष पर बल दिया। व्यक्तित्व के विकास को उन्होंने मनोसामाजिक अहं विकास की संज्ञा दी। उन्होंने फ्रॉयड के मनोलैंगिक विकास के सिद्धान्त के आधार पर व्यक्तित्व के विकास की आठ अवस्थाओं का वर्णन किया। इन आठों अवस्थाओं का विकास एक क्रम से होता है।

3.3.2. मनोसामाजिक विकास की अवस्थाएँ (Stages of Psycho-Social Development)

इरिकसन के अनुसार, मनोसामाजिक विकास की निम्नलिखित आठ अवस्थाएँ हैं। इन अवस्थाओं को विभिन्न आयु वर्ग में उत्पन्न होने वाले अन्तर्द्वन्द्वों के सारांश के रूप में निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है—

तालिका— इरिकसन के अनुसार मनोसामाजिक विकास की अवस्थाएँ

क्रमांक (S.No.)	आयु (Age)	अन्तर्द्वन्द्व (Conflict)
1) शैशवावस्था	जन्म से 2 वर्ष	विश्वास बनाम अविश्वास (Trust versus Mistrust)
2) प्रारम्भिक बाल्यावस्था	3-4 वर्ष	स्वाधीनता बनाम शर्म (Autonomy versus Shame)
3) खेल अवस्था	4-5 वर्ष	पहल बनाम दोष (Initiative versus Guilt)
4) स्कूल अवस्था (उत्तर बाल्यावस्था)	6-12 वर्ष	परिश्रम बनाम हीनता (Industry versus Inferiority)
5) किशोरावस्था	13-18 वर्ष	अभिज्ञान बनाम भूमिका दुविधा (Identity versus Identity Confusion)
6) तरुण वयस्कावस्था	19-35 वर्ष	घनिष्ठता बनाम अकेलापन (Intimacy versus Isolation)
7) मध्य वयस्कावस्था	36-55 वर्ष	जननात्मकता बनाम ठहराव (Generativity versus Stagnation)
8) परिपक्वावस्था	55 वर्ष के पश्चात्	अहं सम्पूर्णता बनाम निराशा (Integrity versus Disappointment)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि **इरिक्सन के अनुसार**, "विकासात्मक यात्रा के प्रत्येक पड़ाव पर व्यक्ति को अनेकों संकेत, संक्रान्तियों एवं अन्तर्द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है। अन्तर्द्वन्द्व का समाधान जिस प्रकार व्यक्ति करता है और वह अपने मनोसामाजिक परिवेश में जैसा अनुकूल करता है।"

- 1) **विश्वास बनाम अविश्वास (Trust versus Mistrust)**—इरिक्सन के सिद्धान्त की यह प्रथम अवस्था जन्म से लेकर दो साल की होती है। जिन बच्चों को अपने माता-पिता तथा अन्य अभिभावकों से सतत उचित स्नेह, प्यार आदि मिलता है, उनमें विश्वास का भाव विकसित होता है। इसके विपरीत माता-पिता या अभिभावक द्वारा जिन बच्चों को रोते-बिलखते तथा चिल्लाते हुए छोड़ दिया जाता है, उनमें दूसरों के प्रति अविश्वास (Mistrust) विकसित हो जाता है जिससे उसे दूसरों के बारे में शक तथा दूसरों से अनावश्यक डर उत्पन्न हो जाता है। शिशु में स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास इस तथ्य पर निर्भर करता है कि उसके जीवन में अविश्वास के अनुपात में विश्वास की मात्रा कितनी अधिक है। विश्वास एवं अविश्वास दोनों स्थिति होने पर शिशु के समक्ष संकट उत्पन्न हो जाता है। जब वह इन संकटों का समाधान कर लेता है तो शिशु में एक विशेष मनो-सामाजिक शक्ति विकसित होती है जिसे आशा कहते हैं।
- 2) **स्वायत्तता बनाम लज्जा एवं शंका (Autonomy versus Shame and Doubt)**—इरिक्सन के सिद्धान्त की दूसरी अवस्था 3 वर्ष से 4 वर्ष तक होती है। जब बच्चे में अपने माता-पिता तथा देख-रेख करने वाले के प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाता है तब बच्चे में यह भाव उत्पन्न होता है तथा वे स्वायत्तता एवं स्वतन्त्रता को महत्त्व देने लगते हैं। वे अपने से खाना खाना, कपड़े पहनना तथा शौच करना आदि कार्य करना पसन्द करने लगते हैं। इस अवस्था में वे आत्मनिर्भर होना चाहते हैं। ऐसे समय पर माता-पिता को अपने बच्चों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। दूसरी तरफ कुछ कठोर स्वभाव के माता-पिता प्रायः बच्चों को साधारण कार्य करने पर भी डाँटते या पीटते हैं जिससे बच्चों को अपनी क्षमता पर शक होने लगता है जिससे वे अन्दर ही अन्दर लज्जा अनुभव करने लगते हैं। जब बालक स्वायत्तता बनाम लज्जा तथा शक के संकट का सफलतापूर्वक समाधान कर लेता है तब उसमें जो मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है उसे इच्छा-शक्ति (Willpower) कहा जाता है। जिसके फलस्वरूप बच्चे शक तथा लज्जा की परिस्थिति में भी खुलकर आत्म-नियन्त्रण (Self Restraint) का प्रयोग करके व्यवहार कर पाते हैं।
- 3) **पहल बनाम दोष (Initiative versus Guilt)**—इरिक्सन के सिद्धान्त की तीसरी अवस्था 4 वर्ष से 5 वर्ष की होती है। यह बालकों का प्राक्स्कूली वर्ष होता है तथा यह अवधि प्रारम्भिक बाल्यावस्था की होती है। जब बच्चों में स्वायत्तता का भाव विकसित हो जाता है तो वे अपने आस-पास के वातावरण में अन्वेषण करना प्रारम्भ कर देते हैं तथा नयी-नयी उत्सुकता दिखलाना प्रारम्भ कर देते हैं। इस अवस्था में बच्चे अनेक संज्ञानात्मक क्रिया-कलाप दिखलाते हैं जिसे पहल की संज्ञा दी गई है। माता-पिता को चाहिए कि वे इनके इस प्रयास की सराहना करें। यदि किसी कारण से माता-पिता बच्चों के इस पहल की आलोचना करते हैं या उन्हें दण्डित करते हैं तो इससे बच्चों में दोषभाव उत्पन्न हो जाता है। बच्चों में जब पहल का अनुपात इस दोषभाव के अनुपात से अधिक होता है, तो उनमें एक विशेष मनो सामाजिक गुण लक्ष्य-उन्मुखी व्यवहार करने की प्रेरणा उत्पन्न होती है।
- 4) **परिश्रम बनाम हीनता (Industry versus Inferiority)**—इरिक्सन के सिद्धान्त की चौथी अवस्था 6 से 12 वर्ष तक होती है। इस अवधि को उत्तर-बाल्यावस्था भी कहा

जाता है। जब बालकों में पहले से विभिन्न प्रकार की नवीन अनुभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं तो वे अपनी ऊर्जा को नए ज्ञान अर्जित करने तथा बौद्धिक कौशल को सीखने में लगाना प्रारम्भ कर देते हैं। यहाँ वे अपनी प्राप्त सफलता एवं उसकी पहचान से अत्यधिक प्रोत्साहित भी होते हैं जिसे परिश्रम की संज्ञा दी गई है। बच्चे इस अवस्था में स्कूल में ही अधिकतर समय व्यतीत करते तथा ऊर्जा व्यय करते हैं, इसलिए शिक्षक तथा संगी-साथी का प्रभाव यहाँ महत्त्वपूर्ण होता है। यदि छात्र को अपने कार्य में असफलता प्राप्त होती है तो इससे बच्चों में हीनता का भाव विकसित होता है। इसी प्रकार से यदि बालक को तुच्छ कार्य पर सफलता प्राप्त होती है तो उसमें परिश्रम का भाव विकसित नहीं हो पाता है। प्रायः जो छात्र परिश्रम बनाम हीनता के संकट का सफलतापूर्वक समाधान कर लेते हैं, उनमें एक विशेष मनो सामाजिक गुण विकसित होता है जिसे सामर्थ्यता की संज्ञा दी जाती है। जिसके परिणामस्वरूप छात्रों में यह विश्वास उत्पन्न होता है कि वे वातावरण के साथ ठीक ढंग से निपटने में सक्षम हैं।

5) **पहचान बनाम सम्भ्रान्ति (Identity versus Confusion)**—इरिकसन के सिद्धान्त की पाँचवी अवस्था 13 से 18 वर्ष की होती है जिसे किशोरावस्था कहते हैं। किशोरावस्था में यह जानने की प्राथमिकता बनी होती है कि वे कौन हैं? वे किसके लिए हैं? तथा वे अपने जीवन में किधर जा रहे हैं? इसे **इरिकसन महोदय** ने पहचान की संज्ञा दी है। किशोरों को विभिन्न नवीन भूमिकाएँ करनी होती हैं। यदि किसी कारण से किशोर भिन्न-भिन्न भूमिकाओं का अन्वेषण नहीं कर पाते हैं तथा अपने भविष्य का रास्ता निश्चित नहीं कर पाते हैं तो वे अपनी पहचान के बारे में सम्भ्रान्ति की स्थिति में होते हैं। जब किशोर पहचान बनाम सम्भ्रान्ति के संकट का सही समाधान कर लेते हैं, तो उनमें एक विशेष मनो सामाजिक गुण उत्पन्न होता है, जिसे कर्तव्यपरायणता की संज्ञा दी जाती है। इस सिद्धान्त के परिणामस्वरूप किशोरों में समाज के नियमों तथा आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करने की उन्मुखता बढ़ जाती है।

6) **घनिष्टता बनाम अलगाव (Intimacy versus Isolation)**—इरिकसन के सिद्धान्त की छठी अवस्था 19 वर्ष से 35 वर्ष की होती है। इसे आरम्भिक वयस्कावस्था कहते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति दूसरों के साथ एक धनात्मक सम्बन्ध बनाता है। व्यक्ति में जब दूसरों के साथ घनिष्टता का भाव विकसित होता है तो वह अपने आपको दूसरों के लिए समर्पित कर देता है। इस अवस्था का मुख्य संघर्ष घनिष्टता बनाम अलगाव होता है जो लोग इस संघर्ष का सही-सही समाधान कर लेते हैं, उनमें एक विशेष मनोसामाजिक गुण विकसित होता है जिसे प्यार कहा जाता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति घनिष्टता बनाम अलगाव के संघर्ष का समाधान ठीक से नहीं कर पाते हैं, वे सांवेगिक रूप से अलग तथा दूसरों को प्यार देने एवं दूसरों से लेने में असमर्थ रहते हैं।

7) **जननात्मकता बनाम ठहराव (Generativity versus Stagnation)**—इरिकसन के सिद्धान्त की सातवीं अवस्था 36 वर्ष से 55 वर्ष की आयु की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति की मध्यावस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति में जननात्मकता का भाव अर्थात् अगली पीढ़ी के लिए कुछ धनात्मक चीजों को एकत्रित करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जननात्मकता से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अगली पीढ़ी के लोगों के कल्याण तथा उस समाज जिसमें वे लोग रहेंगे को उन्नत बनाने की चिन्ता से होता है। जननात्मकता में उत्पादकता तथा सर्जनात्मकता भी सम्मिलित होती है। जैसे जो शिक्षक अपने छात्रों की उचित शिक्षा-दीक्षा के विषय में सचमुच चिन्तित रहते हैं वे जननात्मकता के उदाहरण हैं। जब व्यक्ति में जननात्मकता की चिन्ता उत्पन्न नहीं होती है तो उनमें स्थिरता उत्पन्न हो जाती है।

ऐसी स्थिति में व्यक्ति में यह भाव उत्पन्न होता है कि वह अपनी अगली पीढ़ी के लिए कुछ भी नहीं कर सके। यह एक प्रकार की आत्म-तल्लीनता की स्थिति होती है जिसमें व्यक्ति की अपनी वैयक्तिक आवश्यकताएँ तथा अपनी सुख-सुविधाएँ ही सर्वोपरि होती हैं। व्यक्ति जब जननात्मकता बनाम स्थिरता के संकट का समाधान उचित प्रकार से कर लेता है तो उसमें एक विशेष मनोसामाजिक शक्ति विकसित होती है जिसे **इरिक्सन** ने देखभाल की संज्ञा दी है। इसमें व्यक्ति दूसरों की भलाई एवं कल्याण की चिन्ता अधिक दिखलाता है।

- 8) **अहंसम्पूर्णता बनाम निराशा/नैराश्य (Integrity versus Disappointment)**—**इरिक्सन** के मनोसामाजिक विकास की यह अन्तिम अवस्था होती है। इस सिद्धान्त में लगभग 55 वर्ष से प्रारम्भ होकर मृत्यु तक की अवधि सम्मिलित होती है। इस अवस्था को बुढ़ापा की अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति का ध्यान भविष्य से हटकर अपने बीते दिनों पर विशेषकर उसमें प्राप्त सफलताओं एवं असफलताओं की ओर अधिक होता है। यदि व्यक्ति अपने पिछले समय का मूल्यांकन धनात्मक ढंग से करता है अर्थात् सफलता अधिक एवं असफलताएँ कम होने का अनुभव करता है तो उनमें सम्पूर्णता का भाव विकसित होता है। यदि वे यह समझते हैं कि उनकी पिछली उपलब्धियाँ ऋणात्मक रही हैं तो उनमें निराशा का भाव विकसित होता है। इस अवस्था में किसी मनोसामाजिक शक्ति का विकास नहीं होता है।

इरिक्सन की विशेषता इस बात में है, कि वह मनोलैंगिक फ्रॉयडवादी सिद्धान्त और बच्चों के शारीरिक एवं सामाजिक विकास के कारकों के विषय में वर्तमान ज्ञान के मध्य जो रिक्तता है, उसे भरने का प्रयास करते हैं।

3.3.3. मनोसामाजिक अवस्था की विशेषताएँ (Characteristics of Psycho-Social Stages)

प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था की विशेषताएँ होती हैं। जैसे—

- 1) **मनोसामाजिक संक्रान्ति (Psycho-Social Crisis)**—मानव विकास की प्रत्येक अवस्था आगे आने वाली अवस्था के एक विशेष क्रम में प्रकट होती है। विकास की प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति को संकट अथवा संक्रान्ति का अनुभव होता है तथा शारीरिक परिपक्वता, सामाजिक दबावों एवं मांगों की परस्पर क्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति के जीवन क्रम में एक ऐसा मोड़ आता है जो उसमें संकट उत्पन्न करता है।
- 2) **अन्तर्द्वन्द्व (Inner Conflict)**—मानव विकास की प्रत्येक अवस्था में दो व्यक्तियों के मध्य अन्तर्द्वन्द्व का होना स्वाभाविक है। मनोसामाजिक संक्रान्ति के समय शारीरिक परिपक्वता तथा नई-नई सामाजिक आवश्यकताओं या मांगों के मध्य जो परस्पर क्रिया चलती है। उसके फलस्वरूप व्यक्ति में एक अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है अर्थात् व्यक्ति संकट या संघर्ष का सामाजिक दृष्टि से संतोषजनक एवं सम्मानजनक रीति से समाधान कर लेता है तो द्वन्द्व की ऋणात्मक शक्तियाँ दब जाती हैं और व्यक्ति विकास के पथ पर आगे बढ़ जाता है।
- 3) **अनुकूलन (Adaptation)**—व्यक्ति द्वारा प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था में आने वाले संकट या संक्रान्ति समस्या का समाधान हो जाता है तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के समाधान धनात्मक रीति से करता है तो उसमें एक प्रकार की विशेष मनोसामाजिक स्थिति की उत्पत्ति होती है। इसी को **इरिक्सन** ने सदाचार (virtue) कहा है।